॥ श्रीहरिः ॥

1794

सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र

परमात्मा ही सत्य है। वह नित्य एकरस और अविनाशी है। सत्यमें कभी परिवर्तन नहीं होता। संसारके इतिहासमें इसके अनेकों दृष्टान्त हैं और ऐसे दृष्टान्तोंमें सत्यनिष्ठ हरिश्चन्द्रका नाम प्रधानतासे लिया जा सकता है।

त्रेतायुगकी बात है। उन दिनों अयोध्याके राजा इक्ष्वाकुवंशी हरिश्चन्द्र थे। वे सम्पूर्ण पृथ्वीके एकच्छत्र सम्राट् थे, धर्ममें उनकी सच्ची निष्ठा थी और उनकी कीर्ति तीनों लोकोंमें फैली हुई थी। सभीकी जुबानपर हरिश्चन्द्रका नाम था, सभी उनके सद्व्यवहार, दानशीलता और सत्यनिष्ठाका लोहा मानते थे। देवता उनपर प्रसन्न थे। उनके शासनकालमें प्रजा संतुष्ट थी, कभी अकाल नहीं पड़ता था। न कोई बीमार होता और न तो किसीकी अकालमृत्यु होती। सारी प्रजा भगवान्‌की उपासना करती थी और अपने-अपने धर्ममें तत्पर थी। सब धनी थे, शक्तिशाली थे, तपस्वी थे; परंतु अभिमान किसीमें नहीं था। राजा हरिश्चन्द्र सबको समान दृष्टिसे देखते थे, सबसे समान प्रेम करते। अनेकों यज्ञ-याग करते रहते। सबसे बड़ी बात उनमें यह थी कि वे सत्यसे कभी विचलित नहीं होते थे।

उनके पुरोहित थे महर्षि वसिष्ठ। वसिष्ठकी आज्ञासे ही उनका राज-काज चलता था और वे वसिष्ठजीका बड़ा सम्मान करते थे। वसिष्ठ सब प्रकारसे योग्य थे, इन्द्र-सभामें हरिश्चन्द्रका पुरोहित होनेके कारण उनको और भी सम्मान मिलता। इन्द्रकी सभामें वसिष्ठके अतिरिक्त विश्वामित्र, नारद

1794 1/A

1794 1/B
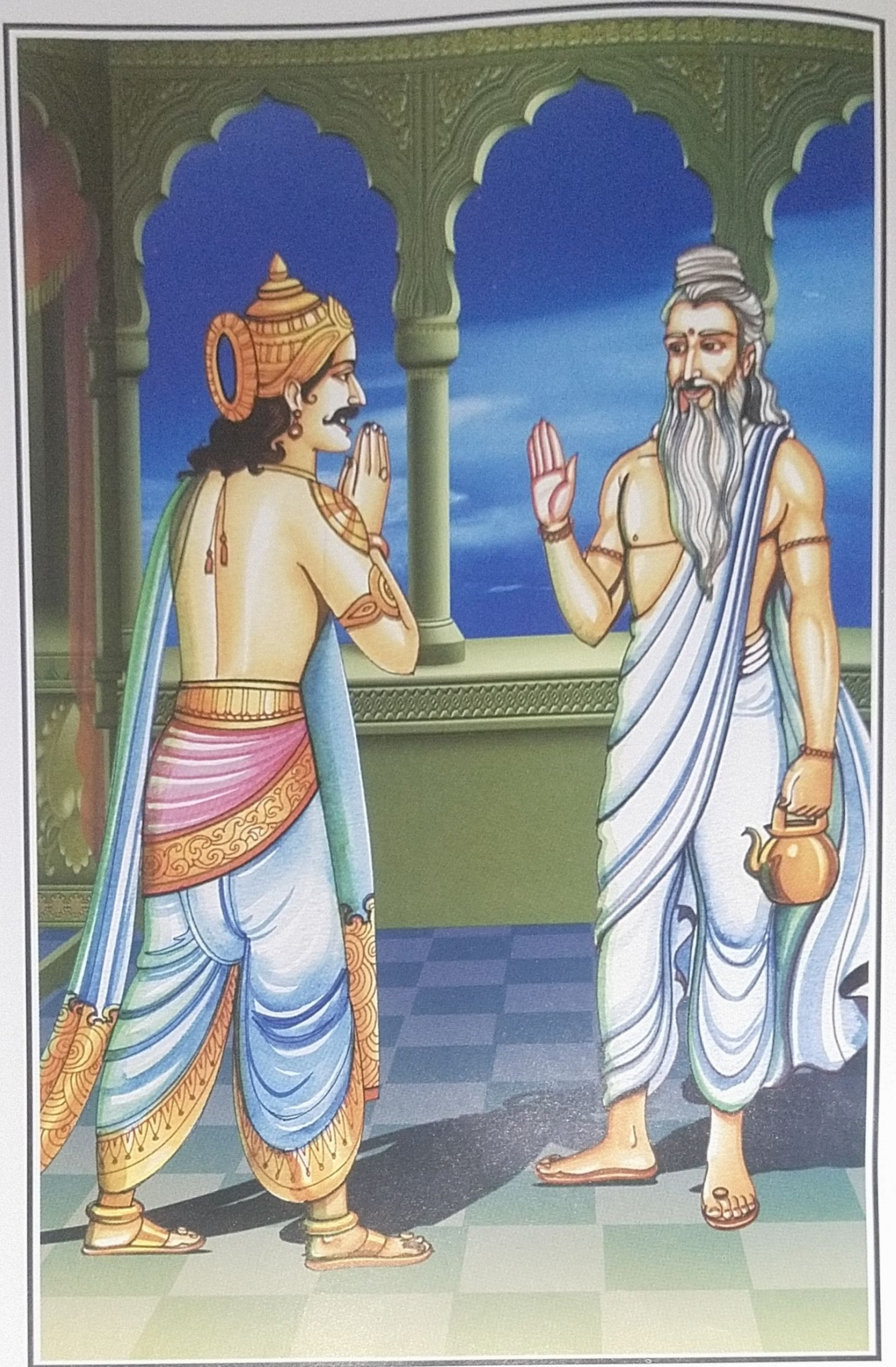
आदि ऋषि-महर्षि भी उपस्थित होते तथा देवताओंके साथ ब्रह्मलोकसे लेकर पाताललोकतकके सम्बन्धमें वार्तालाप करते रहते थे।

एक दिन इन्द्रकी सभा लगी हुई थी। वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि महर्षि एक ओर बैठे हुए थे। देवता, गन्धर्व, पितर, यक्ष आदि भी यथास्थान विराजमान थे। इन्द्रके सामने यही चर्चा चल रही थी कि पृथ्वीलोकमें आजकल सबसे बड़ा दानी, सबसे बड़ा धर्मात्मा और सबसे बड़ा सत्यवादी कौन है? सब लोग इस विषयपर विचार कर रहे थे।

इसपर वसिष्ठने हरिश्चन्द्रको सबसे बड़ा सत्यवादी, धार्मिक और प्रजाको प्रसन्न रखनेवाला राजा बताया। वसिष्ठकी बातोंका समर्थन देवताओंने भी किया।

विश्वामित्रने भरी सभामें वसिष्ठका विरोध किया और हरिश्चन्द्रकी सत्यवादिताकी परीक्षा लेनेका निश्चय कर इन्द्रसभासे उठकर चले गये। वसिष्ठ तथा इन्द्र आदि भी भगवान्‌की ऐसी इच्छा समझकर चुप हो रहे, वे सोचने लगे कि देखें भगवान् क्या लीला करते हैं।

इन्द्रलोकसे लौटकर विश्वामित्रने योगबलसे हरिश्चन्द्रकी आत्माको अपने पास बुला लिया और उनसे सर्वस्व दान करा लिया और पुनः आत्माको राजाके शरीरमें स्थापित कर दिया।

नींद खुलनेपर उन्हें स्वप्नकी एक-एक घटना याद आने लगी। वे सोचने लगे कि चाहे स्वप्नमें ही सही, मैंने अपने राज्यका दान कर दिया है। अब मैं राजा नहीं, राज्यपर मेरा कोई अधिकार नहीं, इसका उपयोग करना मेरे लिये पापजनक है।

एकाएक विश्वामित्र सभामें आ पहुँचे। उन्हें देखते ही हरिश्चन्द्रका चेहरा खिल उठा। उनका स्वागत करके राजाने उन्हें सिंहासनपर बैठाया।
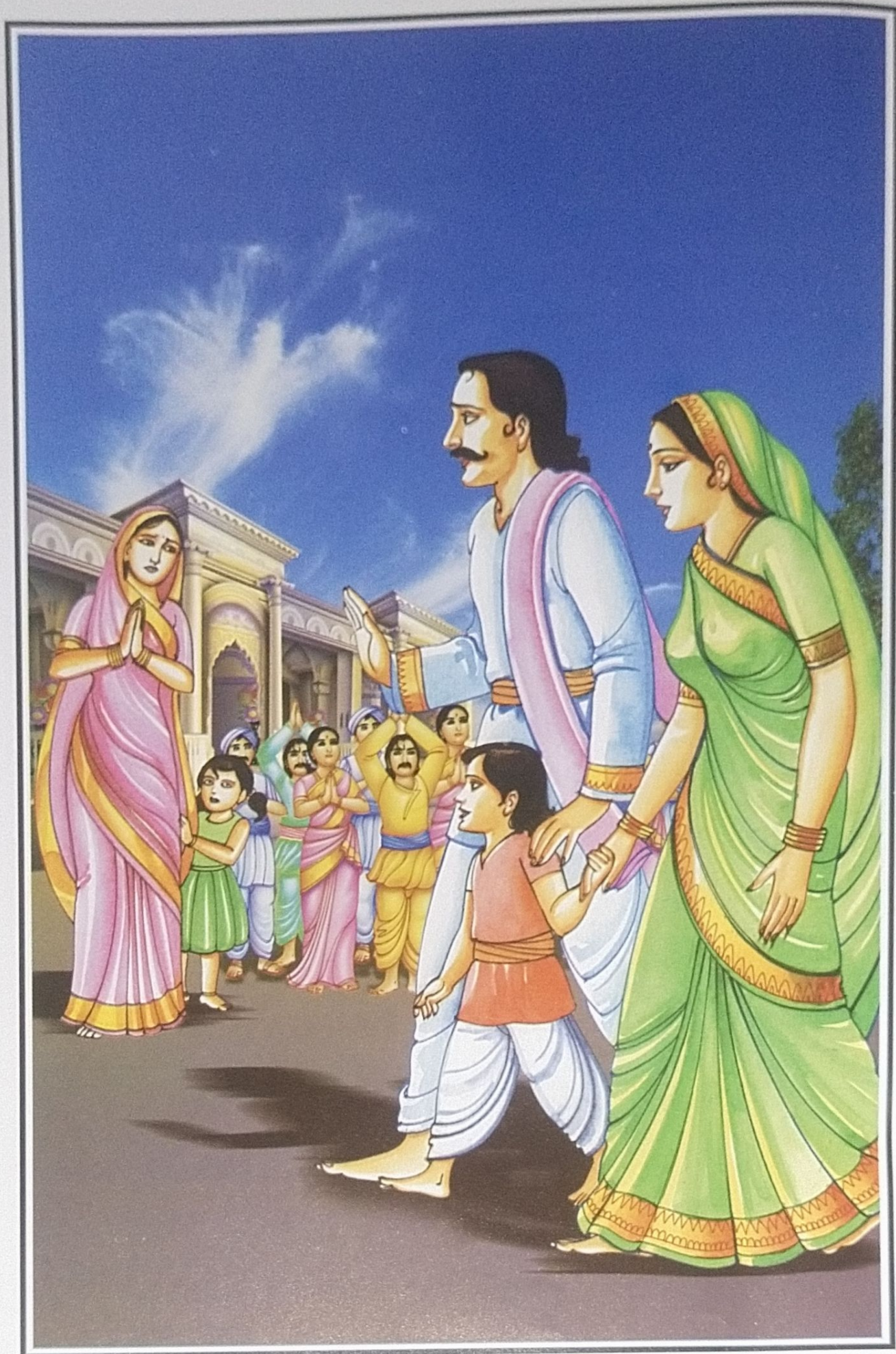
विश्वामित्रने कहा—'हरिश्चन्द्र! सत्यवादियोंमें तुम्हारी बड़ी कीर्ति है। पर यह कैसी बात है कि कल रात मुझे राज्यका दान करके दक्षिणा दिये बिना ही भाग आये और आज राजा बने बैठे हो।' हरिश्चन्द्रने उनके नामकी मुहर दिखाकर और दक्षिणा देनेका वादा करके उन्हें शान्त किया तथा अपनी स्त्री और पुत्रको लेकर राजमहलसे निकल पड़े।

जिस समय हरिश्चन्द्र, शैव्या और रोहिताश्व राजमहलसे नंगे पाँव निकले, उस समय सारी अयोध्यामें हाहाकार मच गया। सारी प्रजा उनसे राज्य छोड़कर न जानेका आग्रह करने लगी। राजवंशकी यह दशा देखकर कोई रो रहा था, कोई विलाप कर रहा था, कोई मूर्च्छित हो रहा था; किन्तु हरिश्चन्द्र निर्विकारभावसे आश्वासन देते हुए आगे बढ़ रहे थे।

विश्वामित्रने आकर पुनः उन्हें डाँटा और दक्षिणा चुकानेके लिये एक माहका समय देकर वहाँसे जल्दी निकल जानेको कहा। समयसे दक्षिणा न चुका पानेकी स्थितिमें भस्म कर डालनेकी धमकी दी। हरिश्चन्द्रने हाथ जोड़कर उनकी सब बातोंको विनयपूर्वक स्वीकार कर लिया।

हरिश्चन्द्र अयोध्यासे तो चल पड़े, परन्तु अब उनके मनमें यह प्रश्न उठा कि कहाँ जायँ? सारी पृथ्वीका दान हो गया है, अब इसमें रहना नहीं चाहिये और इसके अतिरिक्त स्थान ही कहाँ है? एकाएक उन्हें काशीका स्मरण हो आया। उन्होंने सोचा—'काशी तो तीनों लोकोंसे न्यारी है। वह त्रिशूलपर स्थित है, जन्म-मरणके चक्करसे बाहर है, भगवान् शंकरकी राजधानी है, दयामयी माँ अन्नपूर्णा वहाँ सबकी खोज-खबर रखती हैं। अब वहीं चलना चाहिये।' हरिश्चन्द्र शैव्या और रोहिताश्वके साथ धीरे-धीरे काशीके लिये चल पड़े।
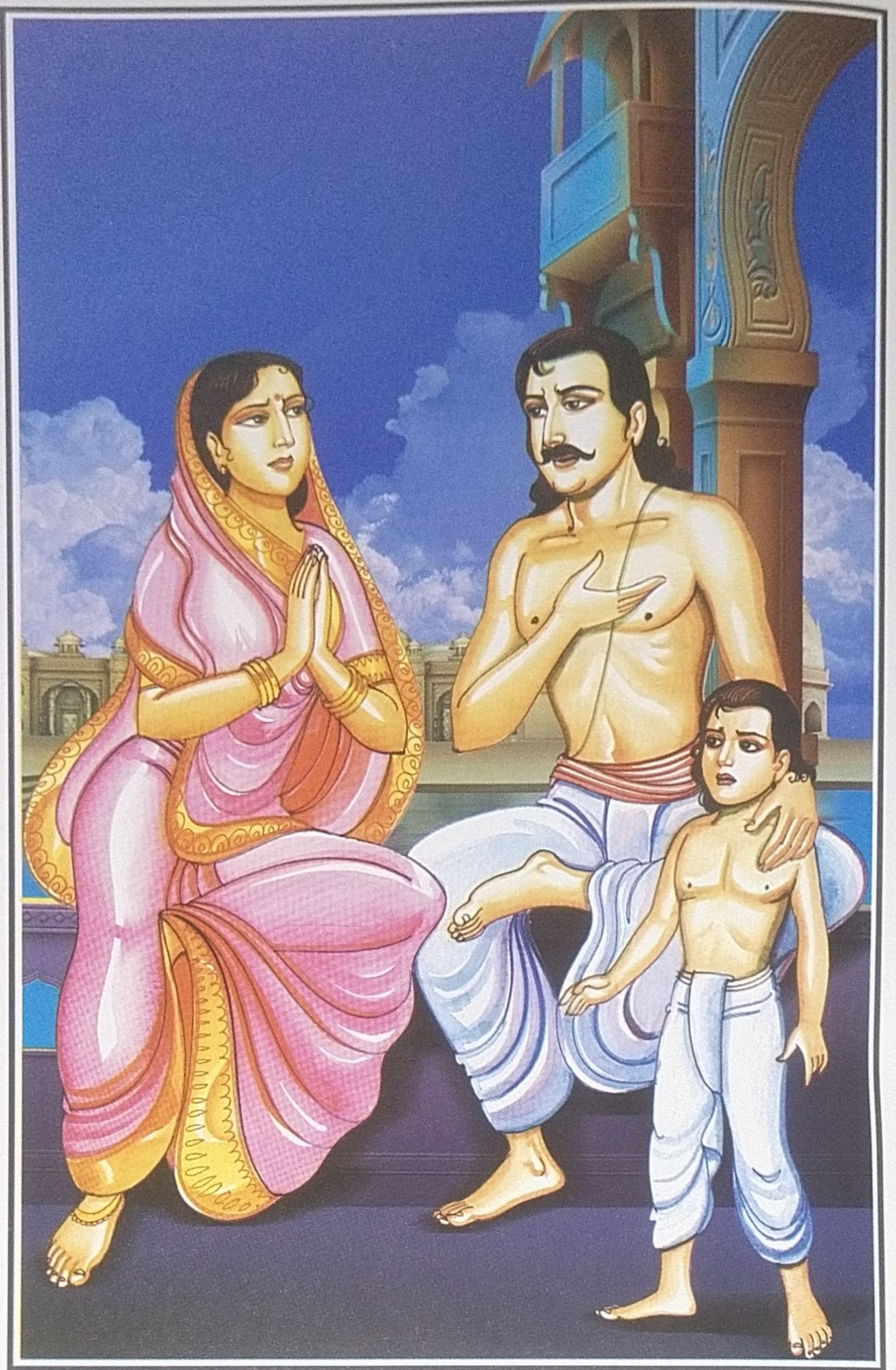
हरिश्चन्द्र अपनी पत्नी शैव्या और नन्हे-से बालक रोहिताश्वको लेकर जब काशी पहुँचे, तब एक महीना पूरा होनेमें केवल एक ही दिन शेष था। काशी अभी थोड़ी दूर थी, सभी थक गये थे। रोहिताश्वके पैरमें काँटा चुभ गया और वे वहीं एक वृक्षके नीचे बैठकर काँटा निकालने लगे। रोहिताश्वके कोमल तलवेमें कई फफोले पड़ गये थे। उनकी आँखोंमें आँसू आते-आते रुक गये। काँटा निकल गया, परन्तु शैव्याके अधिक थक जानेके कारण वे आगे नहीं बढ़ सके। यही कारण था कि अयोध्यासे काशी आनेमें लगभग एक महीनेका समय लग गया, नहीं तो जाने कबके पहुँच गये होते।

रोहिताश्वने कहा—'पिताजी! मुझे बड़ी भूख लगी है।' हरिश्चन्द्र विवश थे। उनके पास बच्चेकी भूख मिटानेका कोई उपाय नहीं था। रोहिताश्वने पुनः कहा—'माँ! भूख लगी है।' शैव्याकी आँखोंसे आँसूकी बूँदें लुढ़क पड़ीं। हरिश्चन्द्रने कहा—'जब भगवान्‌के दिये हुए राज्यको हम प्रसन्नतासे भोगते थे, तब उनकी दी हुई विपत्तिको प्रसन्नतासे क्यों न भोगें?' यह उनका प्रसाद है, इसकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिये। बड़े प्रेमसे इसे शिरोधार्य करना चाहिये।

रोहिताश्व बार-बार भूखा होनेकी याद दिलाने लगा, परन्तु राजा-रानी विवश होनेके कारण उसे काशी नगरी, गंगा नदी और पक्षियों आदिको दिखाकर बहलाने लगे। रोहिताश्व लड्डू खानेका आग्रह करने लगा।

हरिश्चन्द्र रोहिताश्वको बहला रहे थे कि उधरसे सिरपर कुछ लिये हुए एक वृद्धा स्त्री निकली। हरिश्चन्द्रने उससे कहा—'देवि! हमलोग दूसरे देशके हैं। रास्ता नहीं मालूम है। नगरमें कैसे जायँ?' वृद्धाने कहा—'महाभाग! तुम्हारे शरीरमें
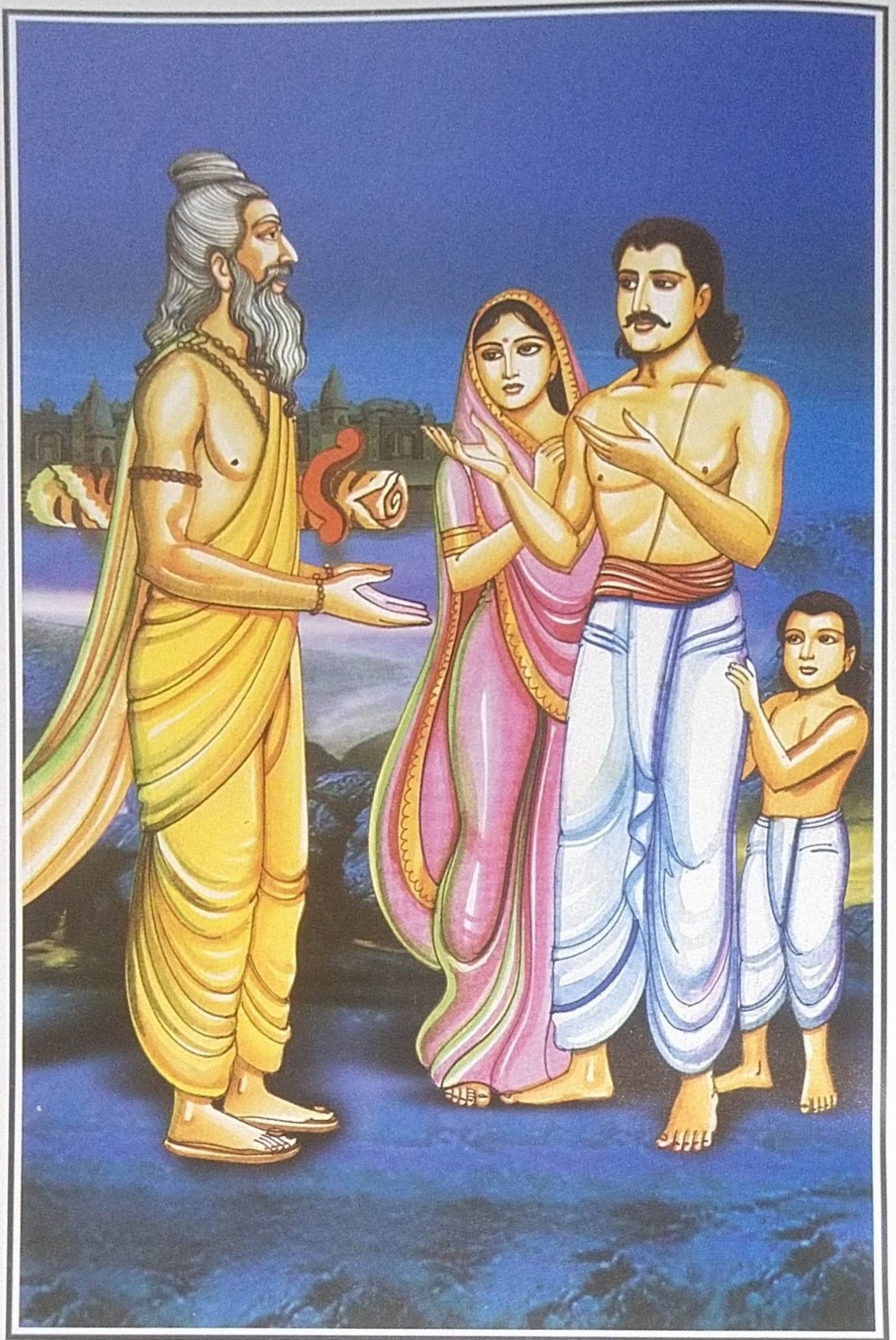
तो चक्रवर्ती राजाके लक्षण हैं; तुम्हारी यह अवस्था कैसे हुई?' हरिश्चन्द्रने कहा—'माता! अब पुरानी बातोंके कहनेसे क्या लाभ? उसे तुम जानकर भी क्या करोगी?' रोहिताश्वने कहा—'पिताजी! मुझे भूख लगी है।' वह वृद्धा स्त्री अपनी पोटलीमेंसे कुछ कलेवाका सामान निकालकर रोहिताश्वको देने लगी। हरिश्चन्द्रने कहा—'माता! हम किसी मनुष्यके कृपाभाजन नहीं बनना चाहते। तुम इस बच्चेको भिक्षामें कुछ मत दो।' वृद्धाने कहा—'अरे! क्या यह बच्चा तुम्हारा ही है, मेरा नहीं है? मैं इसे खिलाऊँगी।' कलेवाका सामान देते हुए उस वृद्धा स्त्रीने नगरमें जानेका रास्ता बतला दिया।

हरिश्चन्द्रने शैव्यासे कहा—'प्रिये! आज महीना पूरा हो रहा है। अब क्या किया जाय? सत्यकी रक्षा कैसे हो? क्या प्राण रहते मैं सत्यसे विचलित हो जाऊँगा?' अभी हरिश्चन्द्रकी बात पूरी भी नहीं हो पायी थी कि अचानक विश्वामित्र वहाँ आ गये। राजाने नम्रतासे उन्हें प्रणाम किया और कहा—'भगवन्! ये मेरे प्राण हैं, यह मेरा बच्चा है और यह मेरी पत्नी है। हमलोग आपकी जो सेवा कर सकते हों, वह आज्ञा कीजिये।' विश्वामित्रने कहा—'मैं यह सब नहीं जानता। आज महीना पूरा हो रहा है। मेरी दक्षिणा दे दो। तुम अपनी प्रतिज्ञापर अटल हो न? देखो, अब दोपहर हो रही है।' हरिश्चन्द्रने कहा—'भगवन्! आप आधे दिनतक और प्रतीक्षा कीजिये। सूर्यास्तके पूर्व ही मैं आपकी दक्षिणा दे दूँगा। विश्वामित्रने कहा—'यही सही! मैं शामको फिर आऊँगा। यदि तुम मेरी दक्षिणा न दे सके तो अनर्थ हो जायगा।' विश्वामित्र चले गये।

हरिश्चन्द्र सोचने लगे कि इनकी दक्षिणाका क्या प्रबन्ध किया जाय? ऐसे अवसरपर मुझे ऋण भी कौन दे सकता

1794 2/A
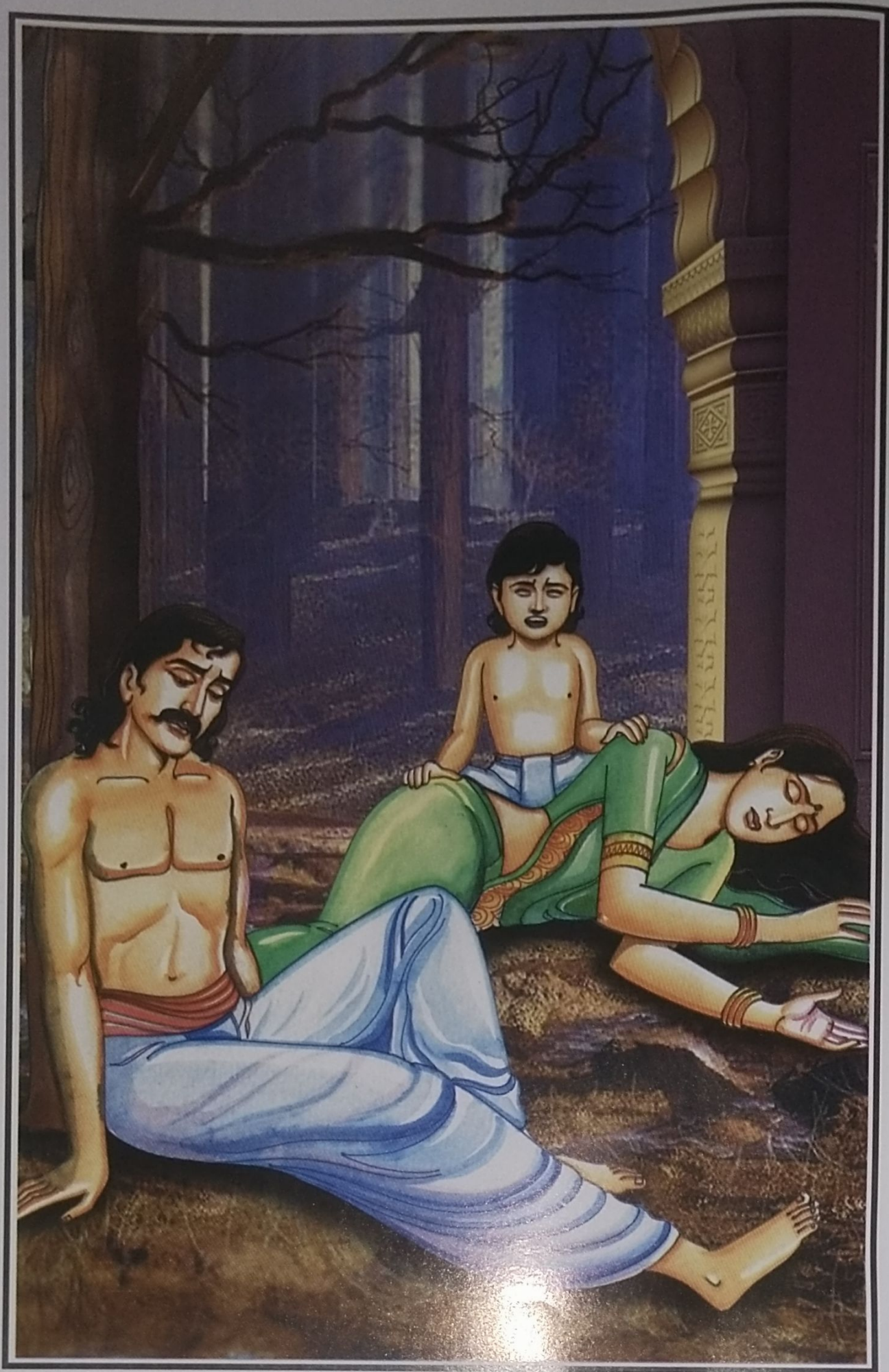
है? किसीसे दान लिया ही नहीं जा सकता। यदि दक्षिणा दिये बिना मर गया तो मुझसे नीच और कौन होगा। अब एक ही उपाय है, अपने-आपको बेच दूँ। जीवनभरके लिये किसीका सेवक बन जाऊँ। किसी प्रकार दक्षिणा देकर प्रतिज्ञा पूरी करनी ही चाहिये। हरिश्चन्द्र सोचते-सोचते व्याकुल हो गये। उन्हें कुछ सूझता ही नहीं था।

शैव्याने कहा—'महाराज! आप चिन्ता छोड़कर अपने सत्यका पालन करें। आप मुझे किसीके हाथ बेच दें। मैं उसकी सेवा करूँगी और मेरा मूल्य लेकर आप विश्वामित्रको दे दीजिये। शैव्याकी यह बात सुनकर हरिश्चन्द्र मूर्च्छित हो गये। वे किसी प्रकार अपनेको सँभालकर कहने लगे—'प्रिये! यह तुमने क्या कहा? यह तो बड़े दुःखकी बात है। क्या हमारा प्रेम-बन्धन समाप्त हो चुका है? क्या हम सुखके दिन भूल गये? मैं ऐसा निष्ठुर कार्य कैसे कर सकूँगा? मैंने ऐसी बातें सुन लीं, मुझे धिक्कार है; मुझे धिक्कार है।' हरिश्चन्द्र जमीनपर गिर पड़े।

शैव्या समझाने लगी—'राजन्! यह किस कर्मका फल है? आप जमीनमें इस तरह क्यों सो रहे हैं? इन्द्र और उपेन्द्रके समान सुख भोगनेवाले आपको मैं जमीनपर पड़ा हुआ नहीं देख सकती।' इतना कहते-कहते शैव्याका गला भर आया और वह भी मूर्च्छित होकर जमीनपर गिर पड़ी।

रोहिताश्व रो-रोकर पुकारने लगा—'पिताजी! उठिये, माँ! उठ, मुझे गोदमें ले ले। मुझे भूख लगी है; कुछ खिलाओ। मेरी जीभ सूख रही है। मुझे पानी पिलाओ।' उसी समय विश्वामित्र वहाँ उपस्थित हो गये।

विश्वामित्रने मूर्च्छित हरिश्चन्द्र और शैव्याके ऊपर अपने
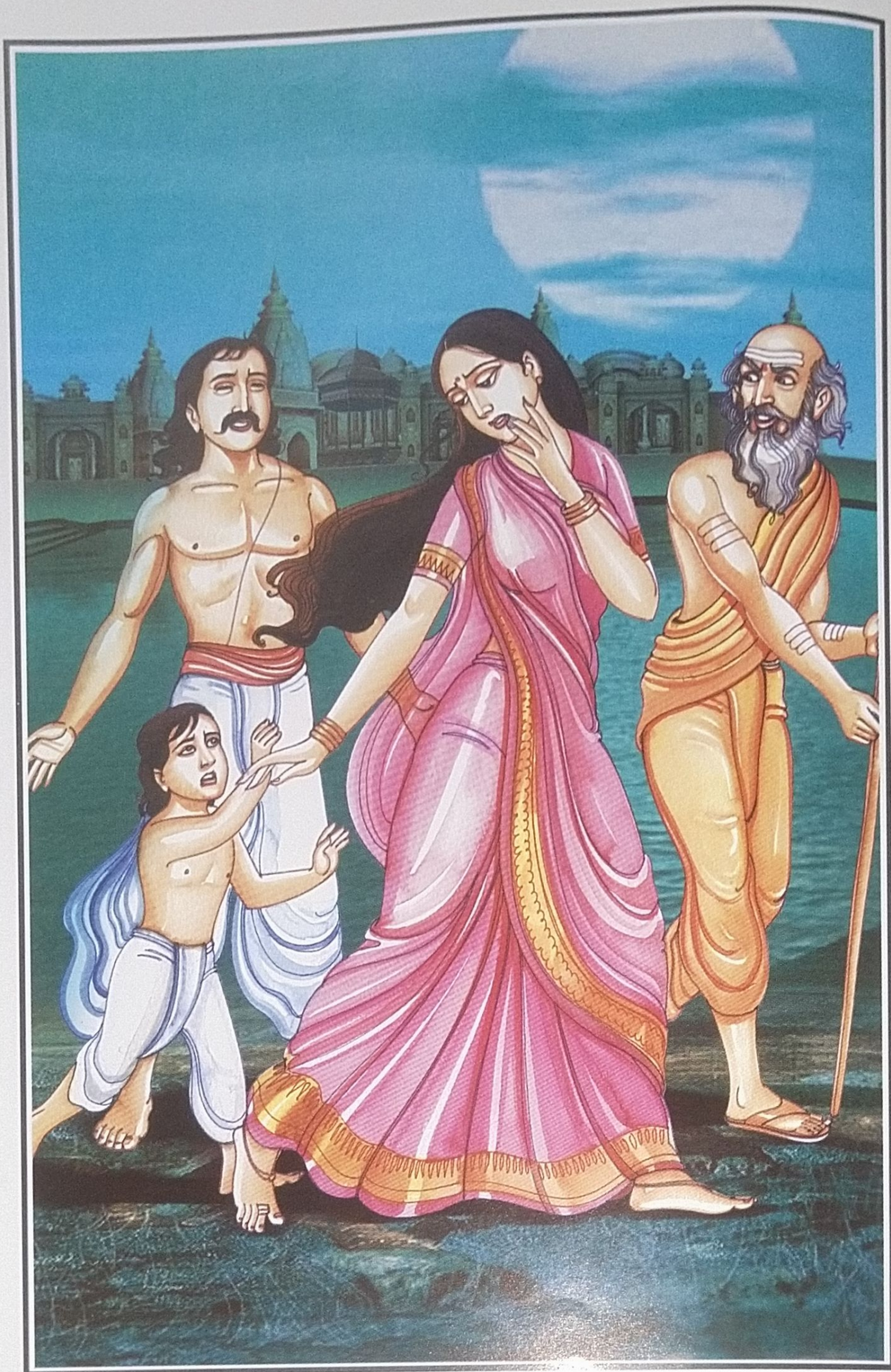
कमण्डलुका शीतल जल छिड़ककर उन्हें जगाया और कहा—'राजन्! उठो, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो। ऋणी मनुष्यका दुःख प्रतिक्षण बढ़ता ही जाता है। उठो, अपने धर्मका पालन करो। विलम्ब मत करो।' विश्वामित्र सायंकालतक दक्षिणा चुका देनेको कहकर चले गये।

हरिश्चन्द्रने शैव्याकी सहमतिसे उन्हें तथा अपनेको बेचकर दक्षिणा चुकानेका निश्चय किया और पुत्र तथा पत्नीके साथ नगरमें प्रवेश किया।

वे जोर-जोरसे पुकारकर अपनी पत्नीको बेचनेकी घोषणा करने लगे। लोग हरिश्चन्द्रकी बात सुनकर चकित हो रहे थे। बहुत-से लोग सोच रहे थे कि किस संकटके कारण यह व्यक्ति अपनी पत्नीको बेच रहा है। कई लोगोंको दया आ रही थी; कइयोंकी आँखोंसे आँसू बहने लगे।

उसी समय एक वृद्ध ब्राह्मण उन्हें खरीदनेके लिये आ गये। वे हरिश्चन्द्रसे बोले—'मुझे एक दासीकी आवश्यकता है। मेरी धर्मपत्नी बड़ी ही सुकुमारी है। उससे घरके काम नहीं हो पाते। बोलो क्या लोगे?' हरिश्चन्द्रने कहा—'भगवन्! मैं नहीं जानता कि इसका क्या मूल्य होना चाहिये। जो उचित हो, वह आप दे दीजिये।' वृद्ध ब्राह्मण-वेषधारी विश्वामित्रने कहा—'राजन्! तुम्हारी स्त्री सब प्रकारसे योग्य है। इसे देखनेसे स्पष्ट मालूम होता है कि इसका चरित्र पवित्र है। इसलिये इसका मूल्य करोड़ स्वर्णमुद्रा होना चाहिये।' इतना कहकर उन्होंने हरिश्चन्द्रके वल्कल-वस्त्रमें स्वर्णमुद्राएँ रख दीं और शैव्याको पकड़कर अपने साथ ले चलने लगे। रोहिताश्वने अपनी माँकी साड़ी पकड़ ली, उसे डाँटकर वे वृद्ध ब्राह्मण महारानी शैव्याको खींच ही रहे थे कि पुत्र-स्नेहके कारण उसके धैर्यका बाँध टूट गया, वह रोने लगी।

उसने कहा—'ब्राह्मण देवता! आपने मुझे खरीद लिया। मैं आपकी दासी हो गयी। मैं आपके साथ चलनेके लिये तैयार हूँ; परंतु एक क्षणके लिये आप मुझे छोड़ दीजिये। मैं अपने बच्चेको भर आँख देख लूँ। फिर यह कब मिलेगा? उसने रोहितकी ओर देखकर कहा—'बेटा! मेरा स्पर्श मत करो। राजकुमार! मैं अब दासी हो गयी हूँ। बालक रोहिताश्व माताको इस रूपमें देखकर 'माँ-माँ' कहकर रोने लगा और जोरसे पकड़ लिया। वह किसी प्रकार अपनी माताको छोड़ता ही न था। ब्राह्मणने रोहिताश्वको डाँटकर उसे एक लात मारी, वह गिर पड़ा।

अयोध्याके चक्रवर्ती महाराज हरिश्चन्द्रकी महारानी शैव्या आज पातिव्रत्य-धर्मके निर्वाहके लिये ब्राह्मणकी दासी होना भी स्वीकार कर चुकी हैं। उसपर पुत्रका रोना उनसे सहन तो नहीं हो रहा था लेकिन कर्तव्य-पूर्तिके लिये महारानी शैव्या अपना मन मसोसकर भगवान्‌से प्रार्थना करने लगीं और इसे भी भगवान्‌का कृपाप्रसाद ही समझा। जिस राजकुमार रोहिताश्वके संकेतपर चलनेके लिये सैकड़ों सेवक हाथ जोड़े खड़े रहते थे, आज वही नन्हा सुकुमार बालक ब्राह्मणके प्रहारसे जमीनपर गिरा है किन्तु शैव्या उसे उठा भी नहीं सकती थी। उसने गिड़गिड़ाकर कहा—'अब आप मेरे मालिक हैं। मैं इतनी प्रार्थना आपसे करती हूँ कि इस बच्चेको भी खरीद लीजिये। यदि आप इसे नहीं खरीदेंगे तो मैं आपके घर जाकर भी पूरी शक्तिसे आपकी सेवा नहीं कर सकूँगी। मेरा मन तो रोहिताश्वके पास होगा। मैं काम कैसे करूँगी? ब्राह्मणने कहा—'यह नहीं हो सकता। यदि मैं इसे खरीद लूँगा तो दिन-रात तुम इसके दुलार-प्यारमें ही लगी रहोगी, घरका काम कैसे सधेगा? मैं इसे
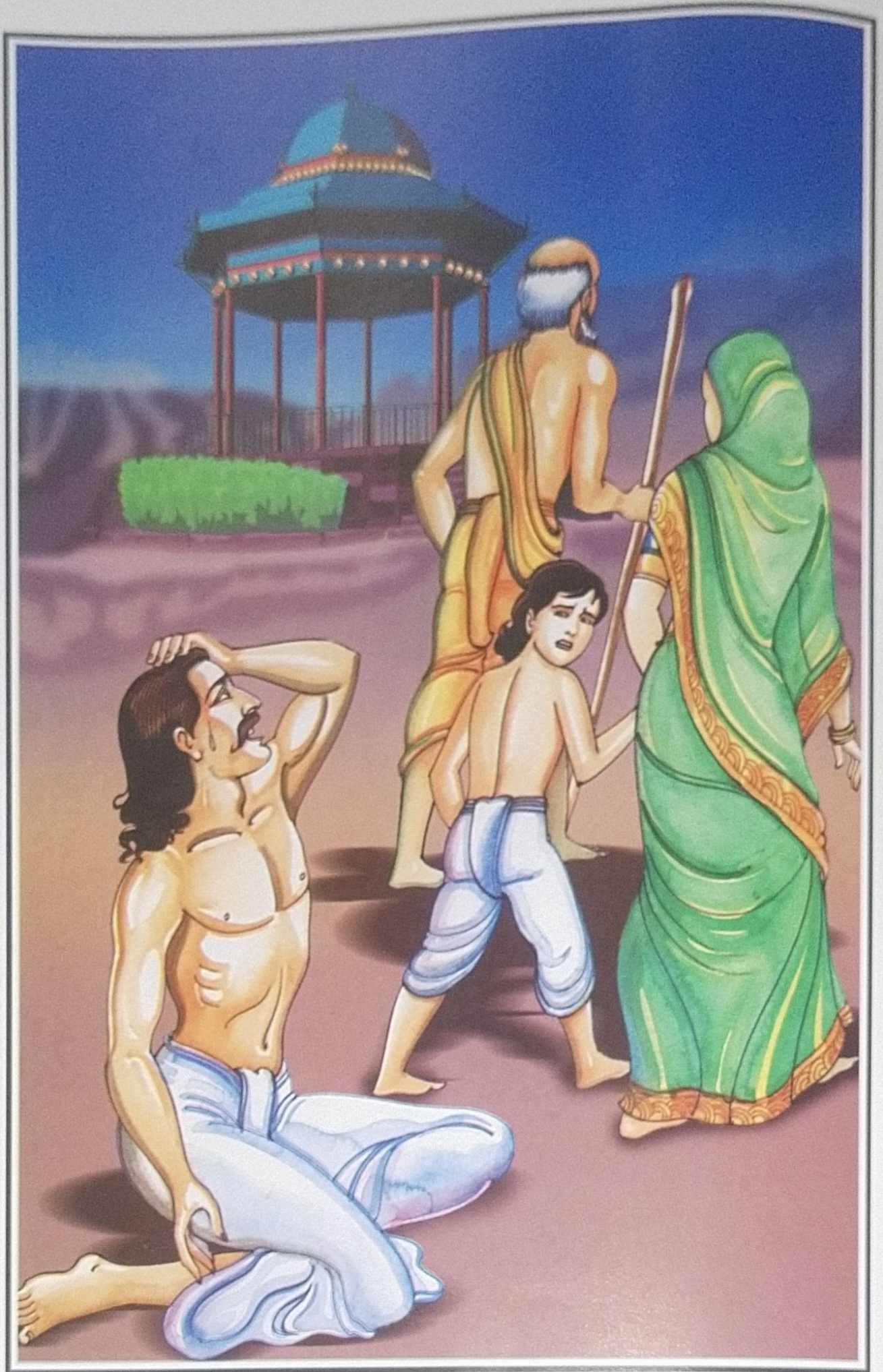
नहीं खरीदता।' परन्तु किसी तरह बालक माताको छोड़नेपर राजी नहीं हुआ।

ब्राह्मणने दया करके शैव्याका आग्रह स्वीकार कर लिया और उसका मूल्य देकर माता-पुत्र दोनोंको ले चला।

शैव्याने मन-ही-मन हरिश्चन्द्रको प्रणाम करके भगवान्‌से प्रार्थना की कि 'प्रभो! यदि मेरे स्वामीने सच्चे हृदयसे सत्यका पालन किया हो और मैं मन, कर्म, वाणीसे उन्हींकी दासी होऊँ तो स्वामीके साथ शीघ्र ही मिलूँ।' हरिश्चन्द्रने अपना मुँह फेर लिया। शैव्याकी यह दशा उनसे देखी न गयी, परन्तु शैव्याकी अपेक्षा उनके हृदयमें सत्यका अधिक प्रेम था। ब्राह्मण, शैव्या और रोहितके जानेके थोड़ी देर बाद ही विश्वामित्र उपस्थित हुए।

विश्वामित्रने दक्षिणाकी माँग की। हरिश्चन्द्रने जो कुछ उनके पास था, उनके सामने रख दिया। विश्वामित्रने कहा—'यह धन बहुत थोड़ा है, इससे मेरी दक्षिणा पूरी नहीं होती। शीघ्र ही और धन ले आइये।' हरिश्चन्द्रने कहा—'भगवन्! अभी मैंने अपने बालक और पत्नीको बेचा है। कुछ समय और प्रतीक्षा कीजिये। मैं आपकी दक्षिणा पूरी कर दूँगा। मैं चाण्डालकी भी दासता स्वीकार कर सकता हूँ, लेकिन सत्यसे विचलित नहीं हो सकता।'

विश्वामित्रने कहा—'अब थोड़ा-सा दिन बाकी है। सूर्यास्तके पूर्व ही इसका प्रबन्ध करना होगा। यदि समयसे मेरी दक्षिणा नहीं मिल गयी तो मैं तुम्हें सत्यसे च्युत कर दूँगा।' विश्वामित्र यह कहते हुए दूसरी ओर चले गये। हरिश्चन्द्र धैर्यके साथ कहने लगे—'भाई जबतक सूर्य है तभीतक मुझे कोई खरीद ले। मैं सब प्रकारसे उसकी सेवा करूँगा।' वे ये घोषणा करते
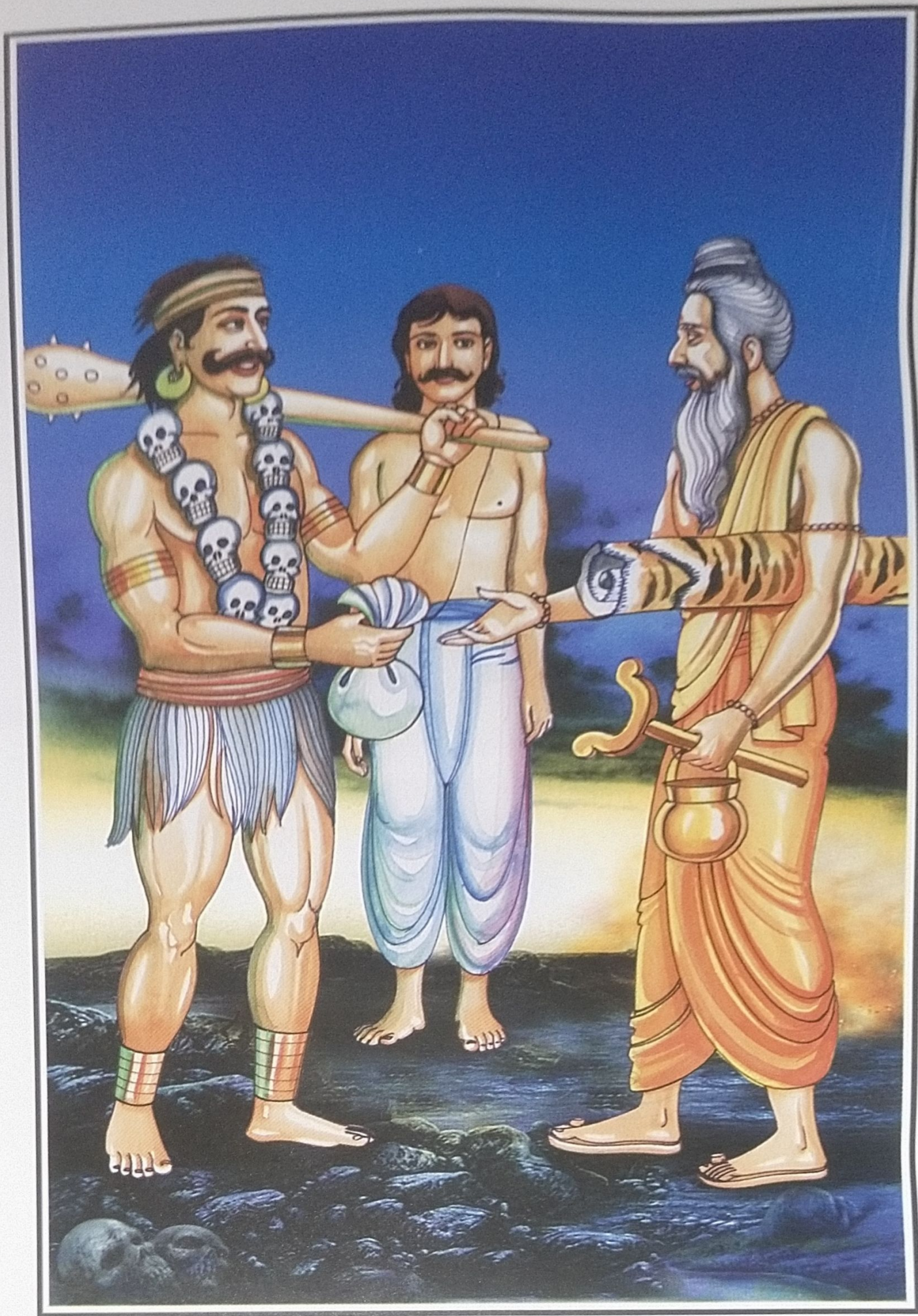
हुए आगे बढ़ ही रहे थे कि धर्मने चाण्डालका वेष धारण करके आगमन किया। उसने हरिश्चन्द्रसे कहा—'मुझे दासकी आवश्यकता है, मैं तुम्हें खरीदूँगा। तुम अपना मूल्य बताओ।' उसकी भीषण आकृति देखकर हरिश्चन्द्र सशंकित हो गये। उन्होंने कहा—'भाई तुम कौन हो? चाण्डालने कहा—'मैं प्रवीर नामका चाण्डाल हूँ। मेरा काम है मुर्दोंका कर लेना और जल्लादी करना।' हरिश्चन्द्रकी आत्मा काँप उठी। वे सहसा यह निर्णय नहीं कर सके कि चाण्डालके हाथों बिकना ठीक है कि नहीं। एक ओर यदि सूर्यास्तके पहले बिक नहीं जाते, दक्षिणा नहीं देते तो सत्यसे च्युत हो जानेका भय है और दूसरी ओर यदि बिक जाते हैं तो चाण्डालकी सेवा करनी पड़ती है। आत्माके विरुद्ध, धर्मके विरुद्ध चाण्डालकी सेवा करनेसे मेरी क्या गति होगी, इस विचारमें पड़ गये।

उसी समय क्रोधसे लाल-लाल आँखें किये हुए विश्वामित्र आते दीख पड़े। विश्वामित्रको देखते ही हरिश्चन्द्र उनके चरणोंपर गिर पड़े। विश्वामित्रने कहा—'जब तुम्हारा पर्याप्त मूल्य देनेके लिये चाण्डाल तैयार है तब बिकनेमें आनाकानी क्यों कर रहे हो? क्या तुम मुझे दक्षिणा देना नहीं चाहते? हरिश्चन्द्रने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! मैं पवित्र सूर्यवंशमें पैदा हुआ हूँ। अबतक मैंने जान-बूझकर वर्णाश्रम-धर्मके विरुद्ध कोई आचरण नहीं किया है। चाण्डालकी दासता करनेको हृदय सहसा तैयार नहीं होता; परन्तु आप इसीमें प्रसन्न हैं और आप ऐसी ही आज्ञा देते हैं तो बिकनेकी तो बात ही क्या, मैं चाण्डालके चरणोंपर अपना बलिदान भी कर सकता हूँ। विश्वामित्रने संकेत किया और चाण्डालने करोड़ों मुद्राएँ देकर हरिश्चन्द्रको खरीद लिया। विश्वामित्रने अपनी दक्षिणा ले ली
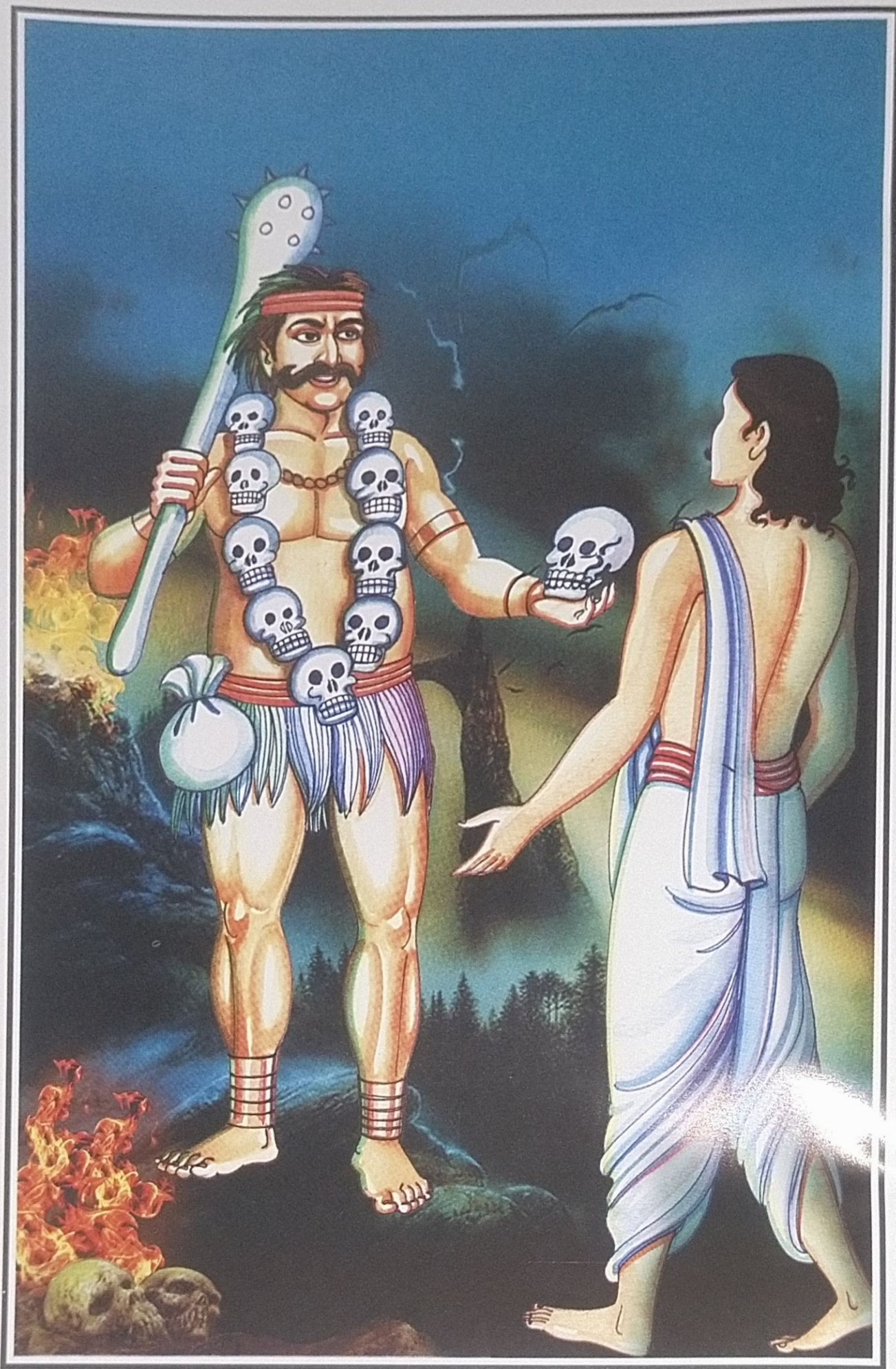
और चाण्डाल हरिश्चन्द्रको लेकर अपने श्मशानपर चला गया।

हरिश्चन्द्र चाण्डालके यहाँ चार दिनतक तो हाथ-पैर बाँधकर एक बन्द कोठरीमें रखे गये। उन्हें भूख-प्यासकी तो याद ही नहीं थी और चाण्डालके घर खाना पड़ेगा, इसकी उनके मनमें सम्भावना भी नहीं थी। पाँचवें दिन उन्हें बन्धनसे निकालकर श्मशानपर लाया गया।

चाण्डालने उन्हें बहुत डाँट-डपटकर उनकी ताड़ना करके बतलाया—'तुम श्मशानपर रहो और जो यहाँ मुर्दा जलाने आवेगा, उससे कर ले लिया करना।' हरिश्चन्द्र रात-दिन बड़ी सावधानीके साथ अपना काम करने लगे।

एक दिनकी बात है, आधी रातके लगभग एक स्त्रीको पकड़कर बहुत-से लोग ले आये और वह चाण्डाल भी उनके साथ था। लोगोंने हरिश्चन्द्रसे कहा—'तुम अभी इस स्त्रीको मार डालो।' हरिश्चन्द्रने कहा—'मैं स्त्रीपर शस्त्र नहीं चला सकता। मैं बिक गया हूँ यह सत्य है, परन्तु मैं अपना काम कर रहा हूँ। मेरा काम स्त्रीको मारना नहीं है। चाण्डालने डाँटते हुए कहा—'तुम्हारा काम कुछ नहीं है जो मैं बताऊँ वही तुम्हारा काम है। तुम बिक गये हो चाण्डालके हाथों और बात करते हो देवताओं-जैसी। तुम्हें सेवक-धर्मका पता नहीं। उसने बलात् हरिश्चन्द्रके हाथमें तलवार दे दी और वे सब वहाँसे हट गये।

उस स्त्रीने हरिश्चन्द्रसे कहा—'भाई! मैं बड़ी विपत्तिमें फँसी हूँ। मेरा एक नन्हा-सा लड़का था, वह आज जिनके यहाँ मैं रहती हूँ, उनका कुश लानेके लिये जंगलमें गया था और वहीं साँपके काटनेसे मर गया।' दिनमें तो मुझे उसके पास जानेकी आज्ञा नहीं मिली, आधी रातको जब मैं उसके पास गयी और रोने लगी तब लोगोंने मुझे पकड़ लिया और कहने
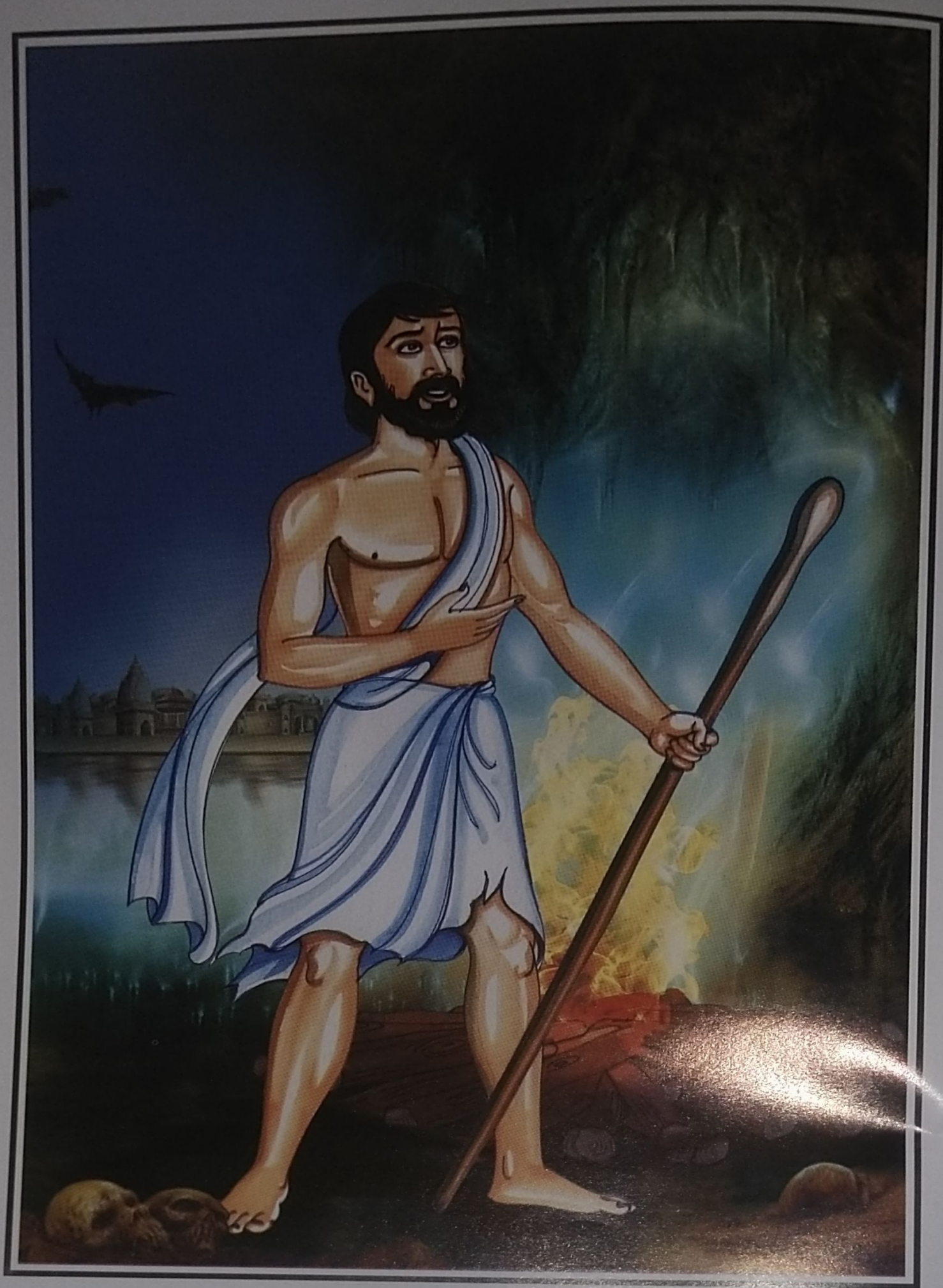
लगे कि 'तू राक्षसी है तथा इस मुर्देको खानेके लिये इस समय यहाँ आयी है। मैं बहुत रोयी, बहुत गिड़गिड़ायी, परन्तु उन्होंने मेरी एक न सुनी। यहाँ पकड़कर मुझे ले आये और मारनेकी आज्ञा दे गये। मैं तुमसे एक प्रार्थना करती हूँ कि मुझे एक घड़ीकी छुट्टी दे दो, मैं अपने बच्चेके शवको उठा ले आऊँ, उसका दाह-संस्कार कर दूँ, तब मुझे मार डालना। मुझे अपने जीवनसे कोई मोह नहीं है। हरिश्चन्द्रने अनुमति दे दी और वह बच्चेका शव लानेके लिये चली गयी।

हरिश्चन्द्र श्मशानपर इधर-उधर टहल रहे थे। उनका मन उसी स्त्रीके सम्बन्धमें नाना प्रकारके संकल्प-विकल्प कर रहा था। थोड़े समय बाद वह स्त्री अपने बच्चेका शव लेकर विलाप करती हुई वहाँ आ पहुँची।

स्त्री शवके दाह-संस्कारके लिये प्रबन्ध करने लगी परन्तु हरिश्चन्द्र उससे कर माँगने लगे। उन्होंने कहा—'पहले कर दे दो, उसके बाद अपने बच्चेका दाह-कर्म करो।' शैव्या कर कहाँसे देती? उसके पास था ही क्या? वह अपने बच्चेको हृदयसे लगाये रो रही थी। हरिश्चन्द्रने देखा कि बालक तो बड़ा ही सुन्दर है। इसके शरीरमें राजाके लक्षण हैं। इसकी मृत्यु साँप काटनेसे हुई है। मेरा रोहित भी इसी उम्रका होगा। भगवान् उसकी रक्षा करें। वे शैव्याको पहचान न सके। दासीका काम करते-करते उसकी आकृति बदल गयी थी। शैव्याने भी हरिश्चन्द्रको नहीं पहचाना। उसके मनमें यह कल्पना भी नहीं थी कि महाराज चाण्डालके वेषमें होंगे। वह विलाप करने लगी।

'बेटा तुम कहाँ हो? बोलते क्यों नहीं? हम किस पापका फल भोग रहे हैं? मेरे स्वामी कहाँ हैं? वे मुझे समझाते भी नहीं। तुम्हें जगानेके लिये आते भी नहीं। वे किसपर विश्वास
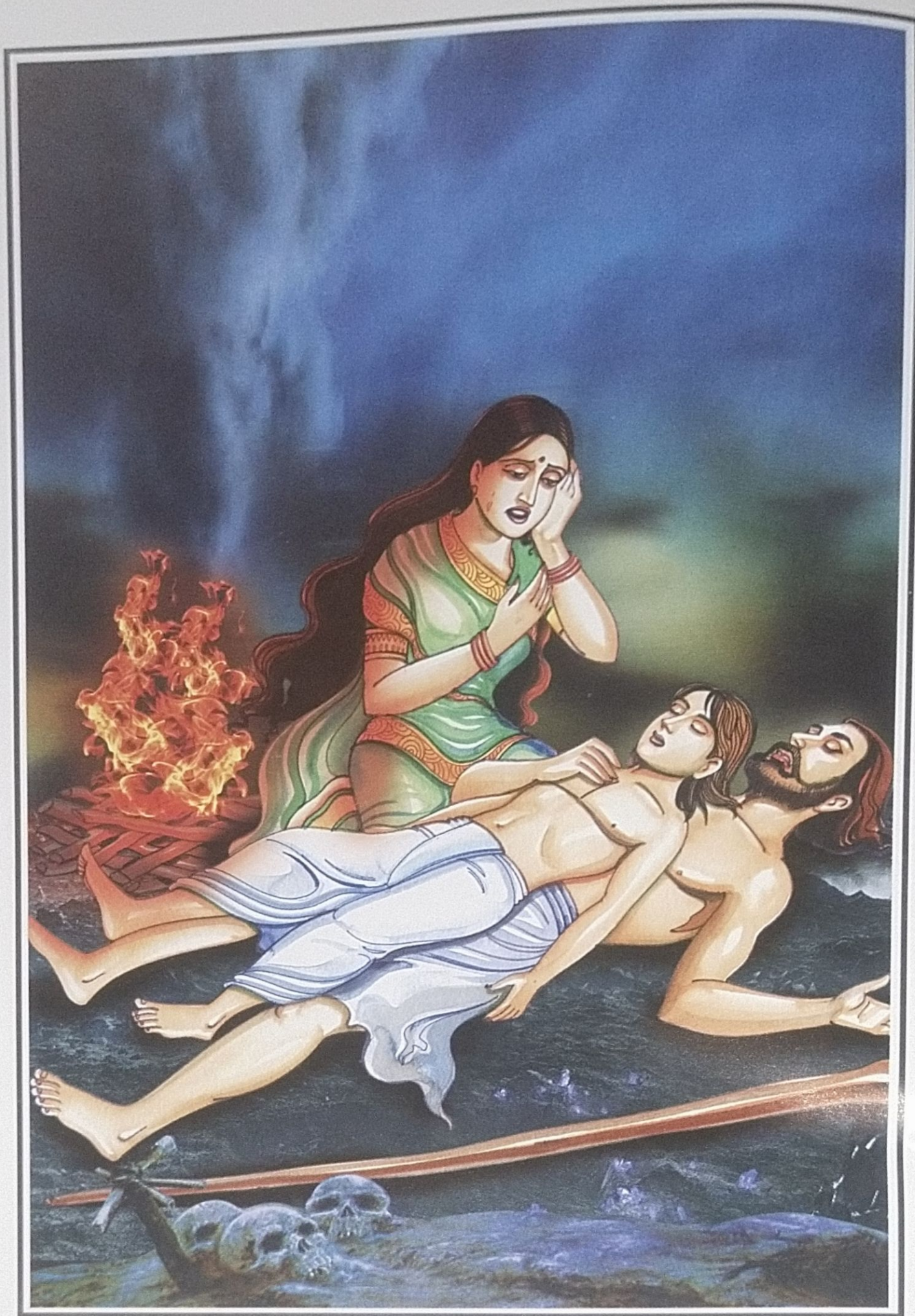
करके इतना निश्चिन्त हो गये? राज्य, पत्नी, पुत्र सब सत्यकी रक्षाके लिये उन्होंने त्याग दिया, इसकी कोई चिन्ता नहीं। परन्तु राजर्षि हरिश्चन्द्रका पुत्र आज दाह-संस्कारके लिये श्मशानपर पड़ा है और इसके शरीरपर कफनतक नहीं, क्या इस बातका उन्हें पता है?' अब हरिश्चन्द्रने शैव्याको पहचान लिया।

'अरे! यह शैव्या है? मेरा रोहित मर गया।' यह कहते हुए हरिश्चन्द्र जमीनपर गिर पड़े।

कुछ ही क्षणोंमें हरिश्चन्द्रको चेतना आयी और वे विलाप करने लगे। उन्होंने झपटकर रोहिताश्वके शवको अपनी गोदमें उठा लिया और मूर्च्छित-से हो गये।

शैव्या अबतक उन्हें पहचान चुकी थी। उसे कितना कष्ट हुआ इसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

राजाने सँभलकर शैव्याके पूछनेपर अपनी सब कथा कह सुनायी और बतलाया कि मैं पराधीन हूँ। चाण्डालका सेवक हूँ, मेरा काम है कर लेना। मैं अब अपने जीवनका प्रयोजन नहीं देखता। मैं रोहितके साथ ही चितामें जलकर मर जाता, परन्तु चाण्डालकी आज्ञा लिये बिना यदि मैं अग्निमें प्रवेश कर जाऊँ तो मुझे भयंकर नरकमें जाना पड़ेगा। इसलिये भगवान् जैसे रखें, वैसे ही प्रसन्नतासे रहना ठीक जँचता है।' शैव्याने कहा—'स्वामिन्! मेरा जीवन ही किस कामका है? आप मेरे पास नहीं, रोहित था वह भी चल बसा, अब किसके लिये जीऊँ? परन्तु मैं ब्राह्मणकी दासी हूँ न! उनकी आज्ञाके बिना मुझे भी मरनेका अधिकार नहीं है। यही बड़ा अच्छा है कि पुत्रके दाह-संस्कारके समय आप उपस्थित हैं।'

अब हरिश्चन्द्रके सामने कठिन कर्तव्य आ गया। नियम था कि इस घाटपर जो जलाया जाय, हरिश्चन्द्र उसका
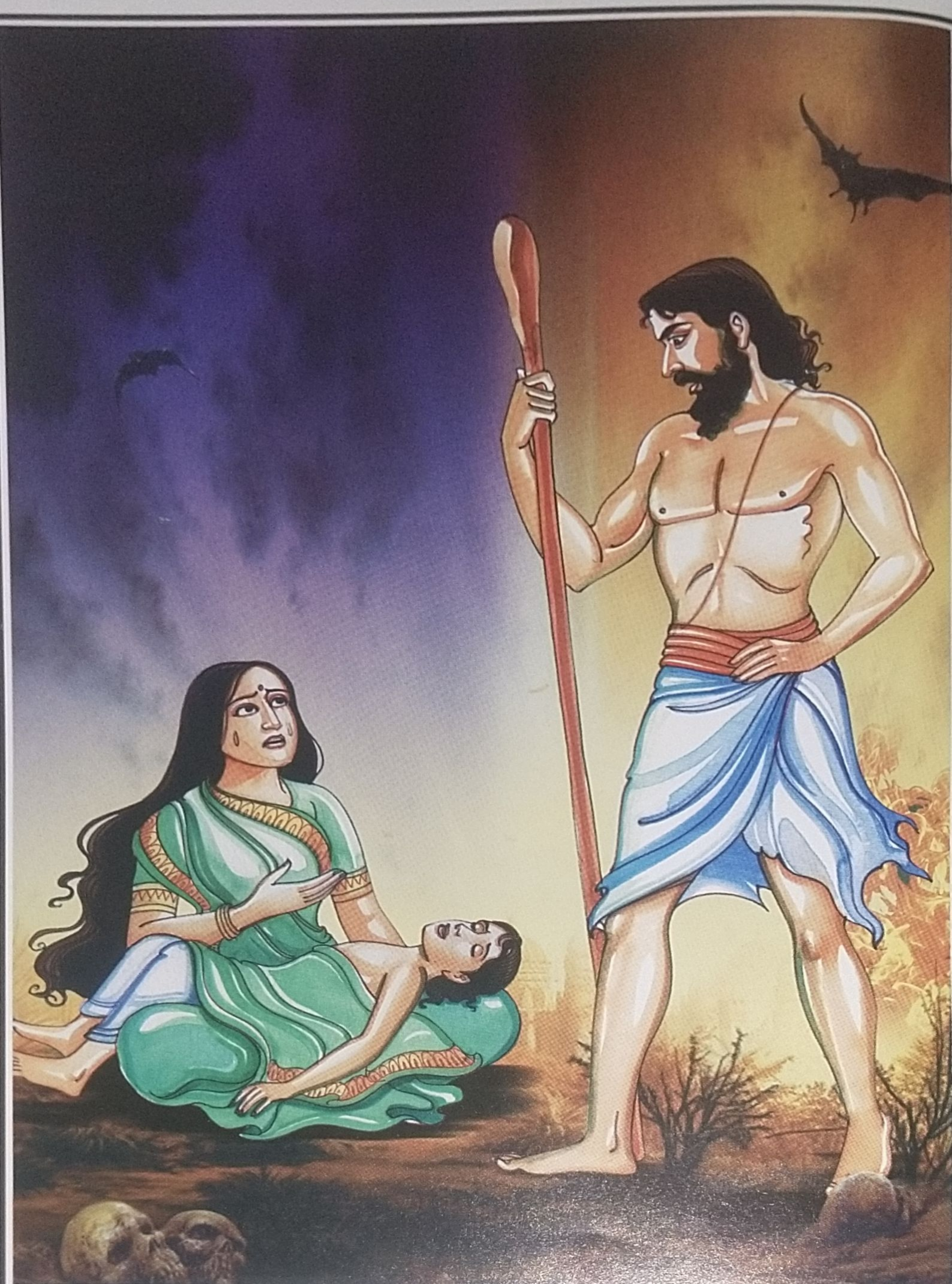
कर अवश्य लें। आज यदि हरिश्चन्द्र अपने पुत्रकी मृत्यु तथा पत्नीके सन्तापके कारण इस कर्तव्यसे विचलित होते हैं तो उनकी धार्मिकता अधूरी ही रह जाती है। वे पुत्र-शोकसे चाहे जितने व्यथित क्यों न हों, आज वे पिता नहीं हैं, चाण्डालके सेवक हैं। पहले कर देकर फिर अग्नि-संस्कार करो।' शैव्याने कहा—'स्वामिन्! आप तो देखते ही हैं; मेरे पास क्या है? मैं कहाँसे कर दे सकती हूँ?' परन्तु हरिश्चन्द्रने उसकी एक न सुनी। शैव्याने कहा—'यही एक साड़ी मेरे पास है। मैं इसमेंसे आधा फाड़कर दिये देती हूँ और आधेसे अपनी लज्जा-निवारण करूँगी। हरिश्चन्द्रने स्वीकार कर लिया।

परीक्षाकी हद हो गयी। हरिश्चन्द्रकी कर्तव्यपरायणता पूरी हो गयी। वे पीताम्बरधारी भगवान् श्रीकृष्णके चिन्तनमें मग्न हो गये। जैसे ही शैव्याने अपनी साड़ी फाड़नेके लिये हाथ लगाया। उसी समय आकाश प्रकाशसे भर गया और बड़ी ही गम्भीर ध्वनि सुनायी पड़ी—'महाराज हरिश्चन्द्र! आप धन्य हैं, आपका दान धन्य है, आपकी धीरता धन्य है, आपकी वीरता धन्य है, उदार, धीर और वीर पुरुषोंके आप आदर्श हैं।' फूलोंकी वर्षा होने लगी। भगवान् नारायण, ब्रह्मा, इन्द्र, धर्म, लोकपाल, सिद्ध, गन्धर्व, रुद्र—'सब-के-सब हरिश्चन्द्रके सामने प्रकट हो गये।'

हरिश्चन्द्रने आश्चर्यचकित होकर सबको प्रणाम किया और अपलक आँखोंसे भगवान्‌की ओर देखने लगे। धर्मने कहा—'बस-बस, तुम्हारी सहनशक्ति, तुम्हारे सत्य और तुम्हारी धर्मनिष्ठासे मैं प्रसन्न हूँ। देखो तुम्हें दर्शन देनेके लिये नारायण, शंकर, ब्रह्मा और इन्द्रादि पधारे हुए हैं। स्वयं विश्वामित्र, जिन्होंने तुम्हारी इतनी कठोर परीक्षा ली है, वे तुमसे मित्रता

करके क्षमा चाहते हैं।' हरिश्चन्द्रने पुनः सबको प्रणाम किया।

विश्वामित्रने कहा—'राजन्! मेरे कारण आपको बड़ा कष्ट हुआ। यह सब विपत्तियाँ मेरे द्वारा उत्पन्न की गयी मायामात्र थीं। इस परीक्षामें आप सफल हुए। आपकी धर्म-निष्ठा देखकर मैं प्रसन्न हूँ। जब भी कोई सत्यवादीका नाम लेगा उस समय सत्यवादियोंमें सबसे पहले आपकी गणना होगी।'

भगवान्‌की प्रेरणासे इन्द्रने अमृतकी वर्षा की, चारों ओर नगारे बजने लगे। केदारेश्वरका सारा श्मशान-घाट दिव्य पुरुषोंसे भर गया। रोहिताश्व जीवित होकर प्रसन्नतासे अपनी माँके गलेसे लिपट गया। उसका शरीर पूर्ववत् स्वस्थ और सुकुमार हो गया। हरिश्चन्द्रने उसे अपनी गोदमें लेकर उसका आलिंगन किया। उसी क्षण हरिश्चन्द्रका शरीर दिव्य हो गया। उनके शरीरपर दिव्य वस्त्र, दिव्य आभूषण और कभी न मुरझानेवाली माला आ गयी। वे देवताओं-जैसे हो गये, उनके हृदयमें पूर्ण आनन्दका संचार हो गया। शैव्या भी दिव्य आभूषणोंसे सुसज्जित होकर रोहितके साथ हरिश्चन्द्रके पास खड़ी हो गयीं। यह सब कुछ भगवान्‌की प्रेरणासे हो गया।

इन्द्रने हरिश्चन्द्रसे कहा—'अपनी पत्नी और पुत्रके साथ तुम्हें सद्‌गति प्राप्त हुई। अब मेरे साथ विमानपर चढ़कर स्वर्गलोक चलो।' हरिश्चन्द्रने कहा—'देवराज! मेरे स्वामी तो चाण्डालराज हैं। उनकी आज्ञाके बिना मैं स्वर्ग कैसे जा सकता हूँ?' हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर धर्मने बड़ी प्रसन्नतासे कहा—'हरिश्चन्द्र! मुझे मालूम था कि आपको विश्वामित्रकी परीक्षामें बहुत-से कष्ट उठाने पड़ेंगे। इसलिये मैंने ही चाण्डालका वेष धारण किया और आपके सामने उसी प्रकारसे कार्य किया। वह चाण्डाल कोई और नहीं, मैं ही था। अब
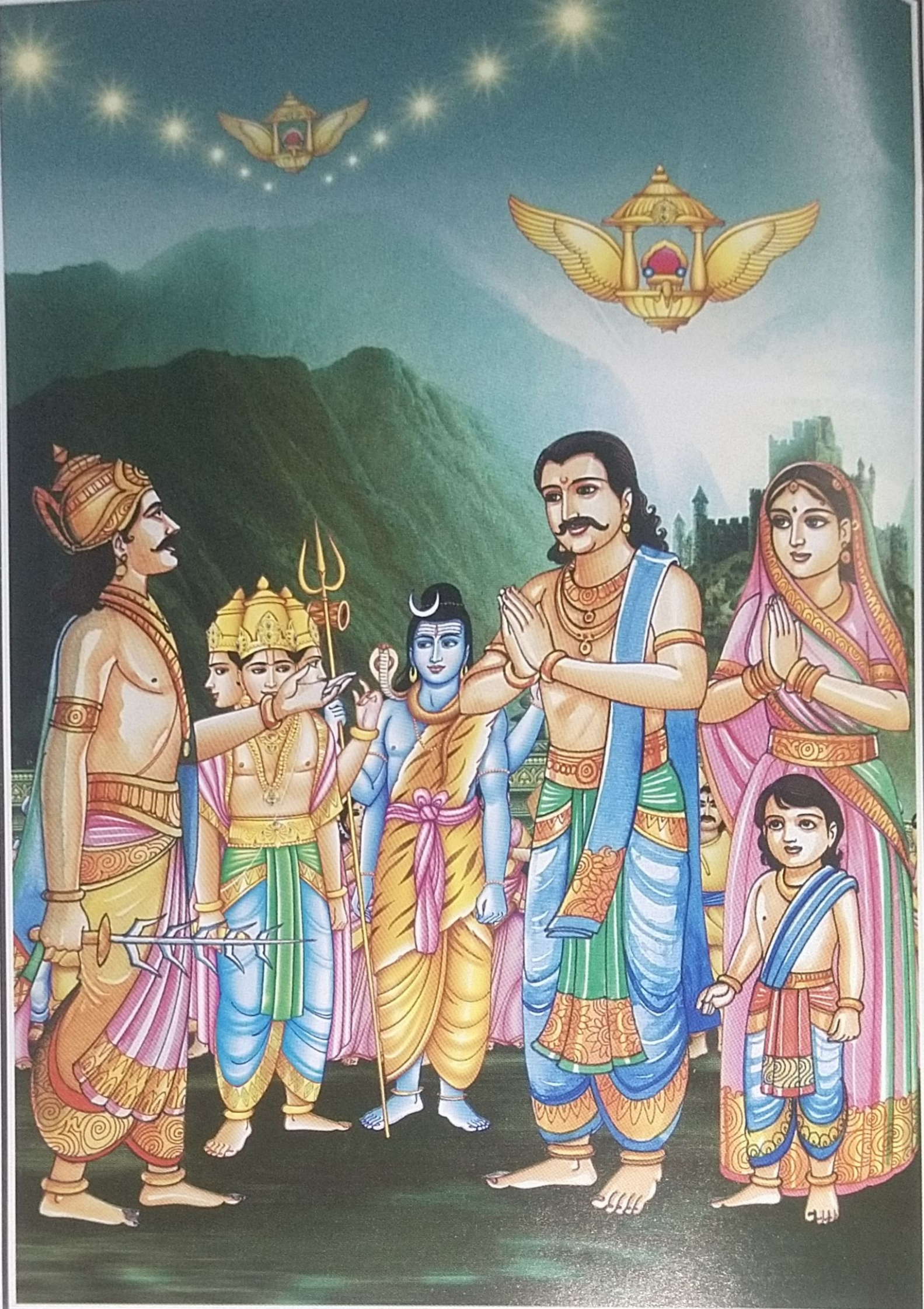
अनुमति लेनेकी आवश्यकता नहीं है।' इन्द्रने हरिश्चन्द्रसे पुनः प्रार्थना की कि 'आप स्वर्गमें चलें।'

हरिश्चन्द्रने इन्द्रको नमस्कार करके कहा 'देवराज! आप मुझपर प्रसन्न हैं। इसलिये नम्रताके साथ मैं आपसे एक निवेदन करना चाहता हूँ। मैं अकेले स्वर्ग नहीं जाना चाहता, मेरी इच्छा है कि सभी अयोध्यावासी मेरे साथ स्वर्गमें चलें। यदि वे सब नरकमें जायँगे तो मैं भी नरकमें जाऊँगा।'

इन्द्रने कहा—'सब लोगोंके अपने-अपने कर्म भिन्न-भिन्न होते हैं। उनके कर्म आपके कर्मोंसे भिन्न हैं। उनके पाप-पुण्यका फल दूसरा है। सबके साथ आप एक ही प्रकारका भोग कैसे प्राप्त कर सकते हैं?' हरिश्चन्द्रने कहा—'महाराज! राजा केवल अपनी शक्तिसे ही राज्यका शासन नहीं करता, वह जो भी कर्म करता है, उसमें सम्बन्धियोंका भी हाथ होता है। मुझसे जो कुछ हुआ है उसमें अयोध्यावासियोंकी सहायता प्रधान रही है। मैं स्वर्गके लोभसे उनका परित्याग नहीं कर सकता। इसके लिये आपसे बार-बार प्रार्थना करता हूँ कि मैंने जो भी सुकर्म किये हों, उसमें सबका बराबर-बराबर हिस्सा हो जाय। यदि मैं अपने कर्मोंका फल अकेले ही भोगता तो बहुत दिनोंतक भोगता, परन्तु आपकी कृपासे उनके साथ यदि मैं एक दिन भी उनका फल भोग सकूँ तो मुझे बड़ा आनन्द होगा।'

भगवान्‌की ऐसी ही लीला थी। भक्तकी अभिलाषा भला कब अपूर्ण रह सकती है। इन्द्रने कहा—'ऐसा ही होगा' भगवान् अन्तर्धान हो गये। हरिश्चन्द्र जैसे दुःखके समय भगवान्‌को स्मरण करते थे, वैसे ही सुखके समय भी भगवान्‌के स्मरणमें लीन थे।

इस प्रकार जो लोग धर्मके लिये अपनेको न्योछावर करनेके लिये तैयार रहते हैं उनके लिये स्वर्गका द्वार सदैव खुला रहता है। इतना ही नहीं, उनका नाम बड़े सम्मान और आदरके साथ सदैव लिया जाता है कि ऐसे एक व्यक्ति थे जिन्होंने ऐसा-ऐसा कार्य किया। उनके नामसे उनका परिवार, वंश, देशका नाम गौरवान्वित हो जाता है।

सत्य साक्षात् नारायणका स्वरूप है। सत्यके प्रभावसे राजा हरिश्चन्द्र महारानी शैव्याके साथ भगवान्‌के धामको चले गये। महर्षि विश्वामित्रने राजकुमार रोहिताश्वको अयोध्याका राजा बना दिया। सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्रके सम्बन्धमें यह दोहा प्रसिद्ध है—

चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार।
पै दृढ़व्रत हरिश्चन्द्रको, टरै न सत्य विचार॥